श्रीः

चन्द्रावली
वा
कुलटाकुतूहल।

उपन्यास.

उपन्यास-मासिक-पुस्तक
के
सम्पादक
श्रीकिशोरीलालगोस्वामि-लिखित.

श्रीछबीलेलालगोस्वामि-द्वारा
स्वकीय-श्रीसुदर्शनप्रेस-वृन्दावन में
मुद्रित और प्रकाशित.
सन् १९१४ ईस्वी.

तृतीय बार १०००] * [मूल्य तीन आने।

* श्रीः *

चन्द्रावली

वा

कुलटाकुतूहल

उपन्यास

उपन्यास-मासिक-पुस्तक

के

सम्पादक

श्रीकिशोरीलालगोस्वामी-लिखित।

श्रीछबीलेलालगोस्वामि-द्वारा

स्वकीय—श्रीसुदर्शनप्रेस, वृन्दावन में

मुद्रित और प्रकाशित

सन् १९१४ ईस्वी

तृतीय बार १०००] * [मूल्य तीन आने ।

* श्रीः *

चन्द्रावली

वा

कुलटाकुतूहल.

पहिला परिच्छेद.

मेरा नाम यदुनाथ मुकुर्जी है । मैं बी० ए० तक पढ़ कर भी पराधीनता की बेड़ी से जकड़ा हुआ हूं; अर्थात् डिटेक्टिव पुलिस के महकमें का मैं दारोगा हूं। उन्नीस वर्ष की अवस्था में बी० ए० पास करने पर मैं इस महकमें का दारोगा हुआ था । आज मेरी अड़तीस वर्ष की अवस्था है और मैं इक्कीस वर्ष से गुप्तचर का काम करता आता हूं।

आज बंगालियों के प्रधान पर्व आश्विन के नवरात्र की नवमी तिथि है और बंगालियों के नवजीवन, नवोत्साह और नवीन आनन्द का अन्तिम दिन है।

चन्द्रहार और शान्तिपुर का जोड़ा भेंटकर मैं अपनी गृहलक्ष्मी को संतुष्ट करके अपने आफ़िस में संध्या होते होते आगया था और यह बिचार कर रहा था कि दैनिक कामों से छुट्टी पाकर और रोजनामचा भरकर मित्रमंडली में जा मिलूं और घूम घूम कर विजया का दर्शन करूँ, या कहीं संगीत सुनूँ; परन्तु

जो गुलामी की जंजीर से जकड़े हुए हैं, उन्हें सपने में भी सुख नहीं ।

इतने में मेरे अफ़सर मार्टिन साहब के चपरासी ने आकर एक लंबा लिफ़ाफ़ा मुझे दिया। उसे खोल कर जो कुछ मैंने देखा, उससे मेरा कलेजा बैठ गया और सारा आनन्द, निरानन्द से बदल गया। उस लंबे लिफ़ाफ़े में साहब बहादुर के नाम का एक तार था और दूसरा उन्हीं साहब महोदय का लिखा हुआ मेरे नाम का पत्र ।

हाय! मुझे अभी बनारस जाना पड़ा! अस्तु, जैसी भगवती की इच्छा!!! बनारस के मजिष्ट्रेट ने मेरे अफ़सर मार्टिन साहब को तार देकर एक चतुर दारोगा को बहुत जल्द इसलिये बुलाया था कि,–'बनारस के दाल की मण्डी नामक महल्ले में एक रंडी का खून हो गया था, पर तीन महीने बीत जाने पर भी पुलिस उसके खूनी का पता नहीं लगा सकी थी ।' इसीलिये मेरे अफ़सर ने मुझे तुरन्त बनारस जाने के लिये हुक्म दिया था ।

निदान, मैंने तिहवार के कारण एक रुपया देकर साहब के चपरासी को बिदा किया और चटपट अपने चलने की तैयारी कर डाली । इतने में डाकप्यून ने आकर छः चीठियां मेरे टेबुल पर रख दीं । उसे भी मैंने एक अठन्नी तेहवारी देकर बिदा किया और एक एक कर उन चिट्ठियों को खोल खोल कर पढ़ने लगा । उनमें से पांच चिट्ठियां तो मेरे मित्रों की थीं, जिन्होंने विदेश रहने के कारण पत्र द्वारा विजया का 'मित्रमिलाप' लिख भेजा था; और छठीं चीठी मेरे एक बनारसी लंगोटियायार की थी ।

उस पत्र को पढ़ते ही मैं कलेजा थाम्हकर बैठ गया। अब मुझे क्षणभर भी कलकत्ते में ठहरना असह्य होगया। मैं विजया के उत्सव को एक दम भूल गया और अपने अफ़सर तथा परमेश्वर को मन ही मन धन्यवाद इसलिये देने लगा कि इस पत्र के पढ़ने के पूर्व ही उन्होंने मुझे बनारस जाने की आज्ञा देदी थी; नहीं तो इतनी जल्दी मैं कदापि नहीं जा सकता था और न अपने अफ़सर से छुट्टी ही ले सकता था।

तो वह छठवां पत्र किसका था? सुनिए, कहते हैं,—वह पत्र मेरे एक लंगोटियायार सहपाठी का था। नाम उनका चन्द्रिकाप्रसाद है और बनारस की दीवानी कचहरी के वे सरिश्तेदार हैं। किसी समय में उनके पिता का ज़माना बहुत चढ़ा बढ़ा था और उनकी कोठी बनारस के अलावे कलकत्ते में भी थी। उन दिनों चन्द्रिकाप्रसाद अपने पिता के साथ कलकत्ते ही में रहते और प्रेसीडेन्सी कालिज में पढ़ते थे। कालिज में दो बरस तक मेरा उनका साथ रहा और परस्पर बड़ी गहरी प्रीति होगई; किन्तु हाय! उनके पिता का अचानचक दिवाला निकल गया और उसी हाय में उनके पिता की मृत्यु भी होगई। तब वे कलकत्ते से बनारस चले गए और बूढ़ी मां के साथ रहने और नौकरी की तलाश करने लगे। वे एफ़० ए० तक पढ़े थे, इसलिये किसी ढब से सरकारी कचहरी में नौकरी पागए और अब बेचारे अच्छी दशा में हैं; किन्तु उनके पत्र ने मुझे बहुत ही घबराहट में डाल दिया। उनके पत्र की नकल यह है,—

प्रियमित्र, यदुनाथ!

यदि तुम्हारी मित्रता सच्ची हो, यदि तुम मुझे अपना प्यारा मित्र समझते हो, यदि मित्र को संकट से उबारना तुम्हारा धर्म हो और यदि मित्रता के धर्म को तुमने तिलांजलि न दी हो तो इस पत्र के पाते ही तुम यहां चले आओ। मैं इस समय बड़ी भारी आफ़त में फंसा हुआ हूं। यदि तुमने अपने आने में तनिक भी देर की तो मेरे प्राणों पर बन आवेगी और फिर कदाचित तुम मुझे जीता न पाओगे।

तुम्हारा सच्चा

चन्द्रिकाप्रसाद।"

पाठक! बतलाइए तो सही कि अपने प्यारे मित्र की ऐसी चिट्ठी पाकर मैं कितना घबराया होऊंगा!!! निदान, मैंने अपनी गृहलक्ष्मी से मिलने का भी अवसर न पाया, क्योंकि घड़ी ने नौ बजा दिए थे; इसलिए मैंने किराए की गाड़ी मंगाई और उसपर स्टीलट्रंक और बिछावन लादकर मैं चढ़ बैठा और अपनी गृहलक्ष्मी के नाम एक पत्र लिख, उसे अपने नौकर को देकर हवड़ा स्टेशन पर पहुंचा।

टिकट बंटरहा था, गाड़ी खुलने में थोड़ी ही देर थी, सो मैंने भी एक ड्योढ़े दर्जे का टिकट लेलिया और दुर्गे, दुर्गे! कहकर गाड़ी में सवार होगया।

सवा दस बजे रात को पसीञ्जर गाड़ी कलकत्ते से खुली थी और दूसरे दिन ठीक आठ बजे रात को मुगलसराय में मैं उतर पड़ा। मेरे तार पाने से मेरे मित्र प्लाटफार्म पर मौजूद थे। हम दोनों मित्र खूब गले गले मिले और

उनकी गाड़ी में सवार होकर मैं मुगलसराय से बना-रस उनके घर आया, क्योंकि रेल का समय न था। रास्ते में मैंने न तो मित्र से उस चिट्ठी के बारे में कुछ पूछा और न उन्होंने ही कुछ कहा। घर आकर मैंने पहले गंगास्नान और विश्वेश्वर का दर्शन किया और मित्र के साथ ब्यालू कर के सो रहा, क्योंकि आधी रात होगई थी और चौबीस घंटे की हरारत से मुझे नींद के झोंके आने लग गए थे।

दूसरा परिच्छेद.

सूर्योदय के पहिले मेरी नींद खुली। मैंने देखा कि मेरे मित्र हाथ मुंह धो, तेल लगा रहे हैं। मैं चट उठ बैठा और मामूली कामों से निपटकर मित्र के साथ गंगास्नान करने चला और रास्ते में मेरे मित्र ने कहा,–

" भई! मुझे ऐसी आशा न थी कि मेरी चीठी को पाकर तुम तुरंत यहां आ पहुंचोगे।"

मैंने कहा,–" हां, यह ठीक है, तुम्हारी चीठी को पाकर मैं इतनी जल्दी कदापि न आसकता; किन्तु ईश्वर ने ऐसा बानक बना दिया कि मुझे चलते समय अपनी गृहलक्ष्मी से भी मिलने का समय न मिला; क्योंकि रेल का समय समीप था।"

यों कहकर मैंने अपने आने का सारा हाल कह सुनाया, जिसे सुनते ही वे चिहुंके और यों कहने लगे,–

" वाह! यह तो अच्छा बानक बना!!! मैंने भी तुम्हें उसी खून की तहकीकात के लिये बुलाया है। चलो, यह अच्छा हुआ कि अब तुम सरकारी हुक्म से इस खून का भरपूर पता लगा सकोगे और जब तक

असली खूनी को गिरफ्तार न कर लोगे, यहांसे न जाओगे। इस काम में मैं तुम्हारी ऐसी अच्छी सहायता करूंगा कि तुम जब चाहोगे, खूनी को पकड़कर मजिष्ट्रेट के सामने पेश कर सकोगे; क्योंकि वह खूनी मेरे परोस ही में है।"

मैंने अपने मित्र की यह बिचित्र बातें सुनकर कहा,— "दिल्लगी रहने दो और सच सच बताओ कि तुमने वैसी चीठी किसलिये लिखी थी?"

यह सुन मेरे मित्र ने कहा,—"भई! दिल्लगी नहीं, मैं सच कहता हूं कि यहांके मजिष्ट्रेट ने जिस काम के लिये तुम्हें बुलाया है, मेरा काम भी उससे कोई दूसरा नहीं है; किन्तु यहां रास्ते में वे सब बातें नहीं हो सकतीं; घर चलकर आज अपनी सारी विपत्ति की बात मैं तुम्हें सुनाऊंगा।"

इतने में हम लोग गंगातट पर पहुंच गए और स्नान तथा बिश्वेश्वर का दर्शन कर आठ बजते बजते घर लौट आए। गरमागरम पूरियां तैयार थीं, पर उतने सबेरे मुझे भोजन करने का अभ्यास न था; इसलिये मित्र के बहुत आग्रह करने से मैंने कुछ जलपान कर लिया और बीड़े खाकर सिगरेट का धुवां उड़ाते उड़ाते मित्र से कहा,—"अच्छा, भई! अब तुम अपनी निपदा का हाल सुनाओ।"

यह सुन, मेरे मित्र चन्द्रिकाप्रसाद मुझे अपने मकान के सबसे ऊपरवाले एक सजे हुए बंगले में ले गए और भीतर से उसका किवाड़ बंद कर तथा मेरा पैर पकड़ बालकों की नाईं रोने लगे। उनका यह ढंग देख मैं बहुत ही घबराया और बार बार समझाने और

असली हाल सुनाने के लिये कहने लगा। आधे घंटे में वे कुछ शान्त हुए और बोले,-

"तो, पहिले तुम यह प्रतिज्ञा करो कि मेरे कुकर्म का हाल सुनकर तुम्हारी श्रद्धा तो मुझ पर से नहीं हट जायगी ?"

यह सुनते ही मैंने बिना कुछ आगा पीछा सोचे ही शपथ-पूर्वक कहा कि-"नहीं; कदापि नहीं। यदि तुम घोर महापातकों में भी लिप्त होगे, तो भी मैं तुम पर उतना ही स्नेह रक्खूंगा, जितना पहिले रखता था, या अब तक रखता हूं। यदि तुम्हींने उस रंडी का खून किया होगा, जिसके खूनी के पता लगाने के लिये मैं यहां आया हूं, तो भी मैं तुम्हें बेलाग बचा लूंगा और चाहे मुझे मरने पर नरक ही में स्थान क्यों न मिले, पर मैं मित्रद्रोही न बनूंगा और तुम्हें पुलिस के हाथ में न दूंगा। मैं कुछ दिन यहां रह कर और मजिष्ट्रेट से यों कह कर कि-'खूनी का कुछ पता नहीं लगा,' अपने घर चला जाऊंगा, पर तुम्हारे ऊपर किसी तरह की आंच न आने दूंगा; इसलिये मुझ पर, मेरे स्नेह पर और मैत्रीधर्म पर तुम भरोसा रक्खो और अपना सच्चा भेद मेरे आगे प्रगट कर दो।"

मेरे मित्र मेरी बातें सुनकर फिर मेरे पैरों पर गिर कर रोने लगे, पर मैंने उन्हें उठाकर गले लगाया, उनका आंसू पोछा और बहुत कुछ समझाया बुझाया। अन्त में वे कुछ शान्त हुए और कहने लगे,-

तीसरा परिच्छेद.

"भाई, यदुनाथ ! मैं बड़ा अधर्मी, घोर पापी

और महा कुकर्मी हूं। मेरे पापों का अन्त नहीं । हाय ! मैंने, अपने समाज में जो घोर विप्लव उठाया है, उस की क्षमा,—सुनने पर उस पाप की क्षमा तुम करोगे, इस पर मुझे किसी तरह भरोसा नहीं होता; क्योंकि मेरे पातक की क्षमा नहीं है । अस्तु, जो कुछ हो, अब मैं अपने जघन्य चरित्र का सारा भेद तुम्हारे सामने प्रगट करता हूं; उसे समझ कर जो चाहे सो करना। "

इतना कह कर मेरे मित्र चुप हो धरती की ओर निहारने लगे और कुछ देर ठहरकर फिर बोले,—

" सुनो, भई ! मेरे पिता का पहिले जैसा काम काज था और फिर वे जिस तरह मिट्टी में मिल गए, यह तो तुम जानते ही हो ! पिता के मरने पर मेरी मां ने जिस तरह अपने दिन काटे और मेरा पालन किया, यह सब तुम्हें मालूम ही है; इस लिये अब मैं अपने विवाह के समय से लेकर आज तक का अपना रहस्य तुम्हें सुनाता हूं जो कि तुम पर अब तक प्रगट नहीं था।

" बाबू घनश्यामदास की लड़की से मेरा ब्याह हुआ था। वे पत्थलगढ़ के नामी ज़िमीदारों में से एक थे । उनकी दो लड़कियों में से बड़ी लड़की ललिता से मेरा विवाह हुआ था। यद्यपि एक अमीर की लड़की से एक कंगाल के साथ विवाह का होना अचरज की बात है, किन्तु जब मेरे पिता का कारबार बना हुआ था, उसी समय से मेरे पिता से और बाबू घनश्यामदास से बड़ी मित्रता थी । इसके अतिरिक्त मेरी माता से और घनश्यामदास की स्त्री से भी बड़ी प्रीत थी और वे दोनों दूर के नाते की बहन भी थीं । निदान, मेरी माता के उद्योग करने से ललिता के साथ मेरा विवाह

होगया और मैं सुन्दरी, गुणवती, पतिव्रता और सुशीला पत्नी पाकर अत्यन्त आनन्दित हुआ।

"पीछे, मेरे ससुरजी ने सरकारी मामूली नौकरी छोड़, अपने यहां रहने और ज़िमीदारी के काम काज देखने के लिये मुझसे बहुत कुछ कहा, पर मैंने सरकारी नौकरी छोड़कर ससुरजी की नौकरी करनी स्वीकार न की, इससे वे मुझसे बहुत ही चिढ़ गए। यहांतक कि उन्होंने मुझसे ही नहीं, बल्कि मेरी स्त्री, अर्थात् अपनी लड़की ललिता से भी सारा सम्बन्ध छोड़ दिया और ऐसा करने का उन्हें इसलिये साहस हुआ कि ललिता की माता बैकुण्ठ सिधार चुकी थीं।

"मेरे ससुरजी की दूसरी लड़की का नाम चंपा था, जिसे यहांके एक कंगाल के लड़के से उन्होंने इसलिये ब्याहा था कि मुझसे चिढ़कर वे अपनी सारी सम्पत्ति अपनी दूसरी लड़की चंपा को दान करना चाहते थे; इसीसे उन्होंने खोज ढूंढ कर गरीब-घर अपनी दूसरी लड़की ब्याह दी। उस समय चंपा की अवस्था नौ बरस की थी और उसका दूलह आठ बरस का था। यहांपर यह भी जान लेना चाहिए कि इस ब्याह में ससुरजी ने मुझे या मेरी स्त्री को न्योता बुलावा नहीं दिया था।

चौथा परिच्छेद.

"निदान, ब्याह होने के साल भर पीछे चंपा रांड़ होगई, क्योंकि उसका बालक पति शीतला रोग में जाता रहा। हाय! इस वज्र-समाचार के सुनते ही मेरी स्त्री अपने पीहर गई, पर ससुरजी ने

बहुत कुछ बुरा-भला कहकर उसे उसी समय अपने घर से निकाल दिया और वह बेचारी रोती कलपती उसी दिन मेरे पास लौट आई।

"अस्तु, योहीं कई बरस बीत गए, चंपा भी चौदह-पन्द्रह बरस की हुई और उसके सासरे में केवल उसकी सास को छोड़कर और कोई न रहा। मेरे ससुर जी भी मरने के किनारे पहुंच गए थे; उस समय उन्होंने मेरे मकान के परोस में एक बड़ा भारी मकान बना-कर मुझे और मेरी स्त्री को जलाने के लिये बड़े ठाठ से चंपा को उस हवेली में रख दिया और अपनी सारी सम्पत्ति उसी (चंपा) के नाम लिख पढ़ कर इतना और भी उस दानपत्र में लिख दिया कि,-"यदि चंपा चाहे तो अपनी इच्छा से कोई दत्तक पुत्र गोद ले सकती है; ऐसी अवस्था में चंपा के पीछे उसका लिया हुआ दत्तक मेरी (चंपा को दी हुई) सारी सम्पत्ति का मालिक होगा; परन्तु यदि चम्पा का लिया हुआ दत्तक उसके सामने ही मर जाय तो उसे फिर भी दूसरे दत्तक के लेने का पूरा अधिकार होगा; अथवा बिना दत्तक लिये ही उसे अपनी सम्पत्ति को चाहे जिसे दे डालने का पूरा अधिकार रहेगा।" किन्तु ससुरजी की इस करतूत से मेरी सुशीला स्त्री के जी में कुछ भी क्षोभ न हुआ।

"निदान, कुछ दिन पीछे मेरे ससुर घनश्यामदास यहीं मरे और उनके मरने पर मेरी स्त्री ललिता फिर अपनी छोटी बहिन के यहां मुकाम देने गई। उस समय चंपा ने बड़े आदर और आग्रह से अपनी बड़ी बहिन को अपने घर रोक रक्खा और मासिक श्राद्ध हो

जाने के अनन्तर वह अपने घर आई। यहां पर इतना कह देना मैं उचित समझता हूं कि मैं ससुरजी के मरने पर मुकाम देने नहीं गया था ।

" निदान, फिर तो चम्पा ने अपनी बड़ी बहिन के साथ मेल-जोल बढ़ाना प्रारम्भ किया । यह बात मैं कह आया हूं कि चम्पा का मकान मेरे मकान के परोस ही में था; सो मेरे और उसके घर की दीवार में भीतर ही भीतर आने जाने के लिये खिड़की बनाई गई और भीतर ही भीतर दोनों बहिनें एक दूसरी के घर आने जाने लगीं।

पांचवां परिच्छेद.

" चंपा दिन भर में सौ पचास बार मेरे घर में आने लगी। वह मेरे एकमात्र पुत्र 'कृष्णप्रसाद' को खिलाती, नित्य नए नए कपड़े गहने उसे पहनाती, उसे अपने घर ले जाकर पहरों रखती, मुझसे बराबर छेड़ छाड़ और हंसी दिल्लगी करती और मेरी स्त्री की बड़ी सेवा करती थी।

एक दिन उसने मेरी स्त्री से कहा कि,-" जीजी ! बाबूजी तो जीजाजी से व्यर्थ चिढ़ गए थे, इसलिये उन्होंने तुमसे या जीजाजी से सारा सम्बन्ध छोड़ रक्खा था; पर अब तो वे नहीं हैं, इसलिये मैं अपनी मांजाई बड़ी बहिन या बहनोई को कभी नहीं छोड़ सकती । कह तो मैं नहीं सकती, क्योंकि तुम्हें एकही एक बच्चा है, किन्तु तुम लोग यदि मानो तो कृष्ण-प्रसाद को मैं गोद लेलूं और जो कुछ बाबूजी मुझे दे गए हैं, उसे मैं अपने बच्चे कृष्णप्रसाद को देजाऊं; क्यों

कि सिवाय इस बच्चे के अब मेरा कौन है, जिसे मैं अपना सर्वस दूंगी।"

"यह सुन मेरी सुशीला स्त्री ने मुझसे बिना पूछे ही अपनी बहिन से कहा कि,—"चंपा! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो तुम मुझसे पूछती क्यों हो; यह बच्चा तुम्हारा है; तुम अभी इसे अपने घर लेजाओ।"

"यद्यपि मुझे अपनी स्त्री की यह बात बहुत बुरी लगी, क्योंकि मैं अपने ससुरजी की करतूत से बहुत ही कुढ़ा हुआ था; परन्तु मेरी गृहलक्ष्मी ने मेरी एक न मानी और एक दिन शुभ मुहूर्त में चंपा ने कृष्णप्रसाद को गोद लेही लिया।

"योंही बरस दिन और बीत गए। उन्हीं दिनों मेरी स्त्री गर्भवती थी, इसलिये चंपा रात दिन मेरे ही यहां रहती थी। हाय! वह गर्भ किस खोटी सायत में आया था कि जिसने मेरा कलेजा निकाल लिया। सातवें महीने में मेरी स्त्री बड़ी मांदी हुई। यहां तक कि लाख उपाय करने पर भी वह न बची और बालक तो होते ही मर गया, पर वह उसके चौबीस घंटे पीछे चल बसी और मुझे जीते जी मार गई।

"अब तो मेरी साली चंपा बराबर मेरे ही यहां रहने, सब भांति मेरी सेवा करने, मुझे ढाढ़स देने और भांति भांति की छेड़ छाड़ करके मेरा जी बहलाने लगी। उसी समय से मेरे घोर कुकर्म का दिन भी प्रारम्भ हुआ।

"इस बात को आप भली भांति जानते हैं कि—'प्रायेण भूमिपतयो वनिता लताश्च यः पार्श्वतो वसति तं परिवेष्टयन्ति;' सो चम्पा की छेड़छाड़, हंसी

दिल्लगी और सूने घर ने मुझे घोर नरक में ढकेल दिया और चंपा के साथ मैंने अपना काला मुंह कर डाला !!! हाय ! फिर क्या था ! पाप का सोता जो बहा, सो बहा !!! फिर तो दिन दिन उस पाप की नदी बढ़ने लगी और उसमें चंपा मेरा, और मैं चंपा का सहारा ले कर दोनों बहने लगे।"

अपने मित्र की बात सुनकर मैं बोल उठा और कहने लगा कि,–" भाई, इसमें तुम्हारा उतना दोष नहीं है, जितना चंपा का; और सच तो यह है कि यह सारा प्रपंच कंदर्प का है; इसी लिये भगवान् मनुजी ने आज्ञा दी है कि–" मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् । बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।" अस्तु, इसके आगे का हाल कहो कि फिर चंपा से तुम्हारी क्योंकर निबटी?"

मेरी बात सुन मेरे मित्र चन्द्रिकाप्रसाद एक ठंढी सांस भरकर कहने लगे,–

" सुनो, मित्र ! यहां पर मैं अपने ससुर घनश्यामदास के कुकर्म का कुछ थोड़ा सा हाल तुम्हें सुनाकर तब पीछे अपने वर्त्तमान संकट का भेद बताऊंगा।

छठवां परिच्छेद

" मेरे ससुर घनश्यामदास को दो लड़कियां थीं,– ललिता और चंपा। चंपा के होते ही मेरी सास मर गई और घनश्यामदास ने तुरन्त दूसरा विवाह किया; किन्तु उनकी वह स्त्री भी विवाह के एक ही महीने के बाद मर गई। तब घनश्यामदास ने एक हिन्दुनी रंडी घर में रख ली, जिससे साल भर पीछे एक लड़की पैदा

हुई। वह रंडी की लड़की चंपा से डेढ़ बरस छोटी थी, पर सूरत शकल में वे दोनों ऐसी एक थीं कि यदि उन दोनों को एक जगह बैठा दिया जाता तो यह कोई नहीं पहचान सकता कि, इन दोनों में कौन चंपा है, और कौन चन्द्रावली!

"उस रंडी का नाम चुन्नी था और उसकी लड़की का नाम मेरे ससुरजी ने चंद्रावली रक्खा था। चंपा और चंद्रावली की सूरत शकल बिल्कुल एक सी क्यों थी, इसका भेद तो ईश्वर ही जाने; किन्तु हां! उन दोनों के पहचानने के लिये ही कदाचित नारायण ने उन दोनोंमें कुछ थोड़ा साफरक डाल दिया था; अर्थात् चन्द्रावली के बाएं गाल पर एक तिल था, पर चंपा का मुखड़ा बिल्कुल बेदाग था। इसी निशानी से वे दोनों चट पहचानली जाती थीं। यदि चन्द्रावली के गाल पर तिल न होता तो नित्य ही चन्द्रावली चंपा, और चंपा चन्द्रावली बनजातीं और फिर उन दोनों का चीन्ह निकालना कठिन ही नहीं, बरन एक प्रकार असंभव हो जाता!

"निदान; घर में रहने के कारण चंपा और चन्द्रावली एक साथ ही खेलतीं, खातीं, पीतीं, सोतीं और पढ़ती-लिखती थीं। मेरे ससुरजी की यह इच्छा थी कि स्यानी होने पर किसी गंधर्व के साथ चन्द्रावली का ब्याह कर दिया जायगा; किन्तु ऐसा वे न कर सके। इसका कारण यह हुआ कि चंपा के विधवा होते ही उनका चित्त संसार से ऐसा हट गया कि चुन्नी को बहुत कुछ दे लेकर उन्होंने अपने घर से निकाल दिया और आप पत्थलगढ़ का मकान, बाग, बगीचा आदि सब

बेंच बांच कर काशीबास करने लगे। पीछे उन्होंने मेरे पड़ोस में मकान बनवाकर चंपा को उसी घर में रख दिया था और आप रात दिन योगवाशिष्ठ देखा करते थे।

रंडी की जात को लज्जा और संकोच कहां! सो ज्योंहीं चुन्नी को मेरे ससुरजी नें निकाला कि चट वह कंबख्त रंडियों के मेल में जा बैठी और अपना शरीर बेचने और अपनी लड़की को गानें बजानें की तालीम दिलवानें लगी। कुछ दिनों पीछे उसने दाल की मंडी में अपना खास घर बनवाया और अपनी लड़की के साथ वह उसीमें रहने लगी।

"यह बात हम कह आए हैं कि चंपा और चंद्रावली बहुत दिनों तक एक ही घर में एक साथ रही थीं; इसीसे उन दोनों में प्रीति हो गई थी; परन्तु जब चुन्नी निकाली गई, तब चंपा और चंद्रावली का भी साथ छूट गया, जो कई बरस तक ऐसा छुटा रहा कि उन दोनों में देखाभाली भी नहीं हुई; किन्तु जब मेरे ससुर जी मरे तो एक दिन चुन्नी चंद्रावली को साथ लेकर चंपा के यहां मुकाम देने आई थी। तब चंपा और चंद्रावली बहुत दिनों में मिलीं। यद्यपि तब लड़कपन के अल्हड़ पने को छोड़ दोनों ही जवानी की भयानक चढ़ाई पर चढ़ रही थीं, पर तौ भी उस समय चंपा का सौन्दर्य "अनाघ्रातं पुष्पं" के समान स्वर्गीय ज्योति से प्रकाशित था और चंद्रावली का रूप "नलिनी करिमर्दिता" के सदृश कलंकित, विमर्दित और हतप्रभ दिखलाई देता था। इतने पर भी उन दोनों के रूप रंग, चमक, दमक और ढांचे तथा चाल

ढाल में अद्भुत एकता थी; बरन उस समानता का पता उसी दिन चंपा और चन्द्रावली ने आपस में मिल और कदआदम आईने के सामने खड़े होकर भली भांति पाया था और उस एकता से उन दोनों में जो पुरानी प्रीति थी, वह और भी नई तथा घनी होगई थी ।

सातवां परिच्छेद

"निदान, फिर तो चंपा चन्द्रावली को कभी कभी अपने यहां बुलाने और कभी कभी चन्द्रावली उसके यहां बिना बुलाए भी आने लगी । ज्यों ज्यों इस आने जाने का क्रम बढ़ने लगा, दोनों की प्रीति भी बराबर बढ़ने लगी । फिर तो उस स्नेह ने यहां तक रंग जमाया कि कभी कभी चुपके चुपके चंपा भी चंद्रावली के घर जाती और घंटे दो घंटे उसके यहां रहकर लौट आती । बहुत दिनों तक चंपा की इस कार्रवाई का भेद मुझसे छिपा रहा, किन्तु हां ! चंद्रावली का चंपा के यहां आने का हाल मैं भली भांति जानता था ।

"एक दिन दस बजे रात के समय, मैं नए चौक से लौटा आता था कि चंद्रावली के घर से निकल कर डोली पर सवार होते मैंने चंपा को देखा । यह देखतेही मुझे क्रोध चढ़ आया और डोली के पीछे पीछे मैं चंपा के घर तक आया । जब वह डोली पर से उतर अपने घर के पिछवाड़े के रास्ते से अन्दर घुसी तो साथ ही मैं भी घुसा और भीतर जाकर मैंने उसे खूब ही फटकारा । आखिर, उसने मुझसे अपने इस काम के लिये क्षमा मांगी और आगे से चंद्रावली के घर न जाने की

प्रतिज्ञा की। यद्यपि मैंने उसे इसके लिये भी बहुत समझाया कि वह चन्द्रावली को भी कभी अपने यहां न बुलावे, जिसे उसने प्रगट में तो स्वीकार कर लिया, पर चुपके चुपके वह चंद्रावली को कभी कभी अवश्य बुलाती और तीज त्योहार पर उसके यहां थाली सँजोय कर भेजती थी।

"कुछ दिनों के बाद जब चुन्नी मर गई तो चंद्रावली यहांके एक नामी बदमाश ऐंठासिंह के फेर में फंस गई, जिसका आना जाना उसके यहां चुन्नी के आगे ही से था। होते होते उस बदमाश ने चंपा और चन्द्रावली के बिलक्षण सादृश्य की बात सुनी और यह भी उसने जान लिया कि चंपा कैसी मालदार औरत है। फिर तो किसी ढब से ऐंठासिंह ने चंपा को खुद भी देख लिया और उस दानपत्र की बाज़ाप्ते नक़ल, जो मेरे ससुरजी चंपा को लिख गए थे, कचहरी से लेली।

"उस बदमाश की इन सब कार्रवाइयों का पता मुझे पीछे बतसिया नाम की मज़दूरनी से लगा, जो चंपा की प्यारी दासी थी और मेरे तथा चंपा के गुप्त संबंध का सारा रहस्य जानती थी। अस्तु, अब तुम इसके आगे के उस भयानक समाचार को सुनो, जिसके लिये मैंने तुमको यहां आने के लिये लिखा था।"

आठवां परिच्छेद.

मैं अपने मित्र चन्द्रिकाप्रसाद की बातें बड़े ध्यान से चुप चाप सुनता रहा। कुछ देर तक वे सिर झुकाए हुए आंसूबहाते रहे, फिर आंखें पोंछ और मेरी ओर देख कर यों कहने लगे,—

" आज इस बात को तीन महीने से कुछ अधिक हुए,–प्रातःकाल का समय था और मैं मुंह-हाथ धोकर पलंग पर लेटा लेटा चंपा के आने का आसरा देख रहा था; क्योंकि कई दिनों से मैं ज्वर से पीड़ित था, इसलिये तड़के मेरे यहां आकर चंपा काढ़ा औंट देती थी।

"ललिता के मरने और मेरे साथ भ्रष्टा होने पर चंपा मेरे घर सारे दिन रहती और रात को दस ग्यारह बजते बजते अपने घर में चली जाती थी, क्योंकि समाज के डर से वह सारी रात मेरे यहां नहीं रहती थी; और यदि कभी वह रात भर मेरे पास रहती भी थी, तो अपने और मेरे घर के दाई-चाकरों की चोरी से। हां, इस रहस्य को उसकी विश्वासी दासी बतसिया अवश्य जानती थी।

" निदान, मैं पलंग पर पड़ा हुआ चंपा के आने का आसरा देख ही रहा था कि बतसिया-घर के अन्दर की खिड़की से नहीं, बल्कि बाहर के सदर दरवाज़े से मेरे घर में आई और मेरे सामने खड़ी हो आंसू ढलकाने लगी। उसकी गोद में मेरा चार बरस का बच्चा कृष्णप्रसाद भी था।

" बतसिया को रोते देख बालक कृष्णप्रसाद भी हिलकी बांधकर रोने लगा; तब मैंने घबराकर बतसिया से उसके रोने का कारण पूछा; जिसे सुन वह मुझे इसी बंगले में, जहां आज हम तुम बैठे हैं, ले आई और कृष्णप्रसाद को खिलौने में बझाकर, मुझसे बोली–

" बबुआजी! इस समय मैं आपको एक बहुत ही खोटी खबर सुनाऊंगी, जिसके सुनने के लिये आप तैयार होइए और अपने कलेजे पर सिल रख लीजिए।"

" बतसिया की बातों ने मुझे घबराहट के समुद्र में डाल दिया और मैंने घबराकर उससे पूछा,-" कहो, मेरी प्यारी चंपा तो प्रसन्न है ?"

" इस पर बतसिया ने कहा,-" जी नहीं, उनकी खैरियत नहीं है, अब वे इस संसार में भी नहीं हैं।"

" हाय ! हाय ! यह मैंने क्या सुना!!!" हाय, मैं इतना कह और अपने कलेजे में मुक्का मार वहीं जमीन में गिरकर मूर्छित होगया । कब तक मेरी वही दशा रही, यह मैं नहीं जानता, पर जब मैं होश में आया तो मैंने बतसिया को अपनी सेवा करते देखा; पर बच्चा कृष्णप्रसाद वहां पर न दिखलाई दिया। तब मैंने बतसिया से कहा,-" हाय, हाय! यह तुम क्या कह रही हो ! ज़रा पूरा हाल समझाकर कहो; और बच्चा कहां है ?"

"बतसिया कहने लगी,-' बच्चा नीचे है । आप घबराइए नहीं और सावधान होकर सुनिए,-बड़ा भयानक समाचार है ! आप यह जानते हैं कि सरकार (१) के मरने पर बीबी रानी (२) के यहां चुन्नी के सब्ज़कदम आए और फिर चन्द्रावली बीबीरानी के पास बराबर आने लगी तथा वे भी कभी कभी उसके यहां जाने लगीं। आपके बहुत डांटने पर यद्यपि बीबी रानी ने अपना जाना उसके यहां रोक दिया था, पर आपकी चोरी से वे कभी कभी चन्द्रावली को अवश्य बुलातीं और तीज त्योहार पर उसके यहां कुछ न कुछ

(१) यह इशारा घनश्यामदास के लिये है।

(२) चंपा।

भेजा ही करती थीं। यद्यपि यह बात बहुत बुरी थी, पर आपस में झगड़ा होने के डर से मैं आप पर यह भेद नहीं प्रगट करती थी। किन्तु हाय! उसका आज कैसा बुरा नतीजा हुआ?

'चुन्नी के मरने पर उस महाल के नामी बदमाश ऐंठासिंह ने चन्द्रावली को ऐसा फांसा कि वह निगोड़ी उस बदमाश के बिल्कुल तावे होगई; यहां तक कि जितना पानी वह पाजी उसे पिलाता, वह कंबख्त उतना ही पीती थी।

'एक दिन की बात है कि मैं चन्द्रावली के यहां कुछ मिठाई लेकर गई थी। रात का समय था और घर सूनसान था। मैं ऊपर चली गई और जाकर मैंने क्या देखा कि कमरे के अन्दर ऐंठासिंह बैठा हुआ एक काग़ज़ चन्द्रावली को दिखला कर यह कह रहा है कि, 'लो आज तुम्हारी दूसरी सूरत को मैंने किसी ढब से देख लिया और यह उस दानपत्र की नकल है, जो उसके बाप ने उसके नाम लिख दिया है; और यह दूसरी दत्तक वाले दानपत्र की नकल है।" यद्यपि इस बात का अर्थ मैं उस दिन नहीं समझी थी कि यह बात मेरी बीबीरानी से ही सम्बन्ध रखती है, जिसे कि कल रात को मैं समझी हूं, पर यह बात मैंने उस दिन ज़रूर देखी थी कि ज्योंही मैं कमरे के अन्दर घुसी, उन दोनों के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगी थीं। आखिर, मैं घर लौट आई और उस भेद के न समझने के कारण मैंने बीबीरानी से उस विषय में कुछ न कहा।

'कल रात को दस बजे ऐंठासिंह ड्योढ़ी पर आया और उसने मुझे बुलाकर और अकेले में लेजाकर एक

चीठी मेरे हाथ में दी और कहा कि,—'इसे अपनी मालकिनी को जाकर अभी दो और कहो कि चन्द्रावली ज़मीन में उतारी हुई है।' उसकी ये बातें सुनकर सचमुच मैं घबरा गई और दौड़ी हुई बीबीरानी के पास पहुंची। उस समय वे इस बच्चे को कलेजे से सांटकर पलंग पर लेटी हुई थीं। मैंने उनसे ज़बानी हाल कह कर वह चीठी दी, जिसे उन्होंने खोलकर पढ़ा और पढ़ने पर उसे फाड़कर फेंक दिया। उस चीठी को मैंने भी देखा था। उसमें केवल तीन पंक्तियां थीं, जो चन्द्रावली के हाथ की लिखी हुई थीं। उनका मतलब यही था कि,—"चन्द्रावली मरती बेर मेरी बीबीरानी से आखिरी मुलाकात किया चाहती थी।" उस चीठी के पढ़ने से सचमुच मेरी बीबीरानी घबरा उठीं और उन्होंने पहिले मुझे चन्द्रावली के घर भेजा; उस समय मेरे पीछे ऐंठासिंह भी साथ ही साथ गया था।

नवां परिच्छेद

"मैंने जाकर क्या देखा कि,—"चन्द्रावली दूसरे मरातिब के एक दालान में पड़ी हुई ऊर्द्ध्वश्वास खैंच रही है!" मुझे देखते ही उसकी आंखों से आंसू बहने लगे और लड़खड़ाती हुई ज़बान से उसने बीबीरानी के देखने की लालसा प्रगट की।

"उस समय की उसकी दशा देख, सचमुच मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैंने वहांसे आकर बीबीरानी से कहा कि,—'बस, वह और कुछ घड़ी की पाहुनी है!' यह हाल सुन बीबीरानी रोने लगीं और चट बंसिया मज़दूरनी को बच्चा सौंप और किसी नातेदार के यहां जाने

का बहाना कर चुपचाप पिछवाड़े के दरवाज़े से मेरे साथ चन्द्रावली के घर पहुंचीं। उस समय भी मैंने देखा था कि पीछे पीछे ऐंठासिंह हम दोनों के साथ साथ गया था।

"घर पहुंचते ही बीबीरानी ऊपर चढ़ गईं और ऐंठासिंह ने मुझे नीचे ही बातों में उलझा लिया। ऊपर जाने के कुछ ही मिनट बाद बीबीरानी ने ऊपर ही से कहा,—"बतसिया! तू जल्दी दौड़ी हुई घर जा, मैं अपने खज़ाने वाली कोठरी की ताली अपने पलंग के सिरहाने तकिये के नीचे भूल आई हूं, उसे जल्दी उठा ला।" यह सुनते ही मैं नीचे से ही घर की ओर दौड़ी और घर आकर बहुतेरा मैंने खोजा, पर ताली का कहीं पता न था। लाचार, मैं फिर ख़ाली हाथ ज्योंही पिछवाड़े के फाटक से निकलना चाहती थी कि मेरी बीबीरानी आ पहुंचीं और उन्हें फाटक के अन्दर कर ऐंठासिंह लौट गया। मैंने ताली न पाने का हाल उनसे कहा, जिसे सुन वे कहने लगीं,—"अरी! उस समय मेरा जी ठिकाने न था, इसीसे कमरे में पड़ी हुई ताली भी मुझे न सूझी। हाय! तेरे पीठ फेरते ही बेचारी चन्द्रावली ने भी स्वर्ग की राह ली। आख़िर, मैं वहां तब क्या करती! सो मैं अकेली ही वहांसे चल पड़ी, पर बेचारा ऐंठासिंह बड़ा भला आदमी है, कि घर में अकेला मुर्दा छोड़कर मुझे यहां तक पहुंचा गया।"

"चन्द्रावली का मरना सुन मैं रोने लगी, पर मेरी बीबीरानी की आंखों में उस समय आंसू का नाम भी न था। वे जाकर पलंग पर सो रहीं और मुझे भी जाकर सो रहने के लिये उन्होंने आज्ञा दी। उस समय उन्होंने

अपने बच्चे को भी न मांगा और मैं भी यह समझकर बच्चे को उनके पास न लेगई कि,-" इस समय चन्द्रावली के मरने से इनका जी दुखी होरहा है।

"निदान, बंसिया से बच्चे को लेकर मैं अपनी जगह पर जाकर सो रही, पर मुझे नींद न आई। रात के दो बजे होंगे, उस समय मैंने अपनी कोठरी के बगलवाले चोर-दरवाज़े के खुलने की आहट पाई! उस छिपी हुई कोठरी से पिछवाड़े के फाटक तक एक छिपी हुई राह गई है। सो, उस आहट को पाकर मैं चिहुंकी और उठकर किवाड़ की दरार में से देखने लगी कि,-" इस पिछली रात के समय इस चोर दरवाज़े को कौन खोलता है!" मैंने क्या देखा कि खुद मेरी बीबी रानी हाथ में बत्ती लिये हुए उस कोठरी में घुसीं हैं! यह क्या बात है! इन्हें इस समय इस कोठरी में जाने की क्या धुन समाई!

" निदान, थोड़ी देर बाद वह कोठरी खुली और बत्ती के उंजाले में मैंने बीबीरानी के साथ ऐंठासिंह को भी देखा!!! हाय! यह क्या! यह क्या गज़ब! ऐंठासिंह यहां क्यों!!! और यह देखकर तो मेरे अचरज का कोई ठिकाना ही न रहा, जब कि मैंने बीबीरानी को ऐंठासिंह के साथ अपने सोनेवाले कमरे के अन्दर जाकर भीतर से किवाड़ बंद कर लेते देखा!

" हाय! तब तो घबराकर मैं अपनी कोठरी से दबे पैर बाहर निकली और बीबीरानी के कमरे की किवाड़ी के छेद में आंख लगाकर भीतर का हाल देखने लगी। मैंने देखा कि,-हाय! ऐंठासिंह से लपटकर बीबीरानी पलंग पर लेटी हुई हैं और यह कह रही हैं

कि,–“ प्यारे ! चंपा को तो तुमने बहुत अच्छे ढंग से खपा डाला; बस, अब किसी ढब से उसके दत्तकपुत्र को भी खपा डालो और चैन से इस दौलत को भोगो।”

“हाय, हाय ! यह मैंने क्या सुना ! क्या यह मेरी बीबी रानी नहीं, उनके भेस में राक्षसी हत्यारी चन्द्रावली है ! हाय, क्या इस हत्यारी ने मेरी बीबीरानी को मार, उनके धन पर इस तरह द़खल जमाना चाहा है और बेचारे निरपराधी दूधपीते बच्चे की भी जान लेनी चाही है ! हाय ! इससे अधिक मैं न तो और कुछ सुन ही सकी और न कुछ कर धर ही सकी। बस, चट मैं सोते हुए बच्चे को गोद में उठा उसी चोरदर्वाज़े से, जिधर से कि ऐंठासिंह आया था, निकलकर मुनीमजी के घर भागी और उन पर यह सारा भेद प्रगट कर सबेरा होने पर अब आपके यहां आई हूं। अब आप जो चाहें सो करें और जैसे बने, इस नादान बच्चे की रक्षा करें।”

दसवां परिच्छेद.

बतसिया के मुख से सुने हुए समाचार को सुनाकर मेरे मित्र चन्द्रिकाप्रसाद ने एक लंबी सांस ली और कहा,–“ भाई, यदुनाथ ! तुम सोच सकते हो कि उस समय इस भयानक समाचार के सुनने से मेरे हृदय पर कैसी बीती होगी ! ! ! अस्तु, मैं अपने कलेजे पर पहाड़ रख और धीरज धर कर उठ खड़ा हुआ। मेरा ज्वर न जाने किधर चला गया और मैंने नीचे आ, मज़दूरनी की गोद में से बच्चे कृष्णप्रसाद को लेकर अपने कलेजे से लगा लिया। इतने ही में चंपा के

मुनीम रघुनाथप्रसाद आगए और उनके साथ अकेले में मेरी बहुत सी बातें हुईं । मैंने या बतसिया ने उन पर चंपा के साथ जो मेरा गुप्त सम्बन्ध था, उसे प्रगट नहीं किया, और बाकी सब हाल उन्हें बतसिया ने तो पहिले सुना ही दिया था; फिर मैंने भी कहा । अन्त में उनकी यही सलाह ठहरी कि,—"चाहे कुछ भी हो, पर कृष्णप्रसाद को उस हत्यारी चन्द्रावली के हवाले कदापि नहीं करना चाहिए ।"

"फिर दोपहर बाद पता लगाने से यह खबर मालूम हुई कि,—'चन्द्रावली रंडी अपने घर में अकेली मरी हुई पाई गई । उसका सिर धड़ से अलग किया हुआ था । पुलिस की जांच से यह बात जाहिर हुई कि,—'चन्द्रावली की जान उसके धन के लालच से नहीं ली गई; क्यों कि जाँच करने पर यही निश्चय हुआ कि उसके घर की कोई चीज़ चोरी नहीं गई है; इसलिये पुलिस ने इस खून का सबब चन्द्रावली के यारों की आपस में लाग या डाह को ही समझा !'

"फिर तो पुलिस ने बहुतेरा सिर मारा, पर वह असल खूनी का पता न लगा सकी; और न ऐंठासिंह पर ही उसका शक हुआ; परन्तु ऐसा क्यों हुआ और जब कि चन्द्रावली के साथ ऐंठासिंह का बड़ा भारी सरोकार था, तो उस पर पुलिस का मुतलक शक क्यों न हुआ ? इसका हाल भगवान् जाने ! सम्भव है कि ऐंठासिंह ने पुलिस की कुछ गुप्त आराधना की हो !!! अस्तु, लाचार, यहांके मजिस्ट्रेट ने तुम्हें बुलाया है कि तुम उस खूनी का पता लगाओ; अतएव अब तुमने इस खून के भयानक भेद को तो सुन ही लिया, इसलिये

जब चाहो, तुम ऐंठासिंह और चन्द्रावली को गिरफ्तार कर सकते हो; क्योंकि ऐंठासिंह चंद्रावली के महल में आज तक छिपा हुआ है । ”

ग्यारहवां परिच्छेद

अपने मित्र की बिचित्र बातें सुनकर मैं बहुत ही चकित हुआ और मैंने मनही मन इस बात का निश्चय कर लिया कि इस संसार में जो न हो, वही आश्चर्य है ! किन्तु अन्त तक इस बिचित्र कहानी के सुनने के लिये मैं चुप रहा और मेरे मित्र कहने लगे,—

“ अस्तु, एक मास तक तो चन्द्रावली चंपा बनी हुई चुप रही । इतने दिनों में न तो उसने बच्चे कृष्ण-प्रसाद को मुझसे तलब किया और न मुनीमजी से ही कुछ छेड़छाड़ की । फिर दूसरे महीने के लगते ही जब उसने यह समझ लिया कि,—‘ अब चंपा का खून पच गया; ’ तो अपने यहांके सब पुराने नौकर मज़दूरिनों को जवाब देकर उनकी जगह पर सब नए बहाल कर लिए, मुनीमजी को भी जवाब देदिया और ज़बर-दस्ती घर में घुस बच्चे और जेवरों के संदूक को उठा ले जाने और डकैती करने की तुहमत लगाकर मुझ पर अदालत फ़ौजदारी और दीवानी में दावा किया है । मैं जमानत पर छूटा हूं, परन्तु वकीलों की राय ने मुझे घबरा दिया है । यहां तक कि जब मैंने किसी तरह बच्चे की और अपनी जान का बचाव न देखा तो घबरा कर तुम्हें बुलाया । अब तुमने मेरी सारी बिपत्ति का हाल सुन लिया, इसलिये अब जो कुछ तुम मुनासिब समझो, सो करो । ”
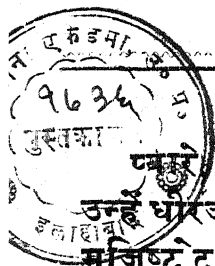
बारहवां परिच्छेद

प्यारे पाठक ! मैंने अपने मित्र की बातें सुनकर उन्हें धीरज दिया और तुरंत भोजन करके मैं साहब मजिस्ट्रेट के बंगले पर चला गया। मैंने चन्द्रिकाप्रसाद और चंपा के घणित बर्ताव के भेद को छिपाकर और सारा हाल मजिस्ट्रेट से कह सुनाया और चंपा तथा चन्द्रावली रंडी के फोटो को दिखलाकर चन्द्रावली के रंडीपन और उसके गाल के तिल के रहस्य को भली भांति समझा दिया।

तब साहब बहादुर इस भयंकर समाचार के सुनते ही घबराए और क्रुद्ध भी हुए, और तुरंत उन्होंने पुलिस के सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को बुलाकर मेरे ख़ातिरख़ाह कार्रवाई करने की उन्हें सम्मति दी। फिर तो सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस और सौ पुलिसमैनों को साथ लेकर मैं चंपा के घर में घुस पड़ा और चन्द्रावली तथा उसके महल के अन्दर से ऐंठासिंह को गिरफ्तार कर लिया।

फिर क्या था ! उन दोनों कंबख्तों ने अदालत में अपने अपने अपराधों को स्वीकार किया और अदालत ने दोनों को फांसी की आज्ञा दी। कई दिन पीछे मेरे सामने ही वे दोनों फांसी पर लटका दिए गए। मेरे मित्र को इस बला से छुटकारा मिला और मैंने भी अपने काम से छुट्टी पाई। फिर मित्र से कृतज्ञता के आंसुओं का उपहार ले, तथा बालक कृष्णप्रसाद को प्यार कर मैं कलकत्ते चला आया।

लावारिस होने के कारण चन्द्रावली का माल और

मकान सरकार ने लेलिया । चंपा की सारी सम्पति का अधिकार बालक कृष्णप्रसाद ने पाया और उसके संरक्षक मेरे मित्र चन्द्रिकाप्रसाद ही हुए । पुराने दाई चाकर तथा पुराने मुनीमजी फिर से बहाल कर लिए गए और नए लोग निकाल बाहर किए गए । इस प्रकार यह छोटी सी कहानी समाप्त हुई ।

इतिश्री ।